International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 115-118

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 115-118
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-01-2017
Accepted: 24-02-2017

अन्जू बाला
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

Correspondence
अन्जू बाला
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

मनुस्मृति में प्राप्त व्यंजनों का पाकशास्त्रीय विश्लेषण

अन्जू बाला

सारांश
भोजन के गुण अवगुण के अनुसार ही लोगों के आचार विचार एवं क्रियाकलापों का निर्धारण होता है। भारतीय संस्कृति में भोजन पान का महत्त्व वैदिक काल से ही चला आ रहा है। हमारी स्मृतियों एक भाग भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन करता है जिससे हम सुगमता से तत्कालीन समाज के खान पान अर्थात् पाकशास्त्र तथा उस युग की पाकशास्त्रीय वस्तुओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कूट शब्दः क्रियाकलाप, भक्ष्याभक्ष्य, चिरमाननीय, यवागू, लोकप्रियता, निषिद्ध, सुलभ व्यावहारिक।

प्रस्तावना
भोजन–पान के द्वारा शरीर की पुष्टि के साथ–साथ मन और मस्तिष्क का भी संवर्धन होता है। भोजन के गुण अवगुण के अनुसार ही लोगों के आचार विचार एवं क्रियाकलापों का निर्धारण होता है। परिणामतः भोजन–पान का प्रभाव अपने समय की संस्कृति पर पड़े बिना नहीं रहता। भारतीय संस्कृति में भोजन पान का महत्त्व वैदिक काल से ही चला आ रहा है तथा प्राचीन परम्परा में अन्यान्य प्रकार के भोजन तथा पेय पदार्थ प्रचलित थे।
हमारी स्मृतियों का एक आवश्यक भाग भक्ष्याभक्ष्य की विवेचना रही है जिससे हम सुगमता से तत्कालीन अथवा प्रत्येक युग के खान पान अर्थात् पाकशास्त्र तथा उस युग की पाकशास्त्रीय वस्तुओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। भोजन करने में, पकाने में तथा परोसने में स्मृतिकारों ने शुद्धता को सदैव अनिवार्य रखा है तथा इस सम्बन्ध में उनकी व्यवस्थाएँ चिरमाननीय ही कही जा सकती हैं।
स्मृति कालीन समाज में भोजन के दो वर्गों का वर्णन हुआ है।
1. शाकाहारी
2. मांसाहारी
अहिंसा के सिद्धान्त की लोकप्रियता को देखते हुए हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने भी अहिंसा को अपने धर्म का एक आवश्यक अंग बना लिया। संभवतः शाकाहार की ओर प्रवृत्त होने लगे। मनु के अनुसार जो मांस भक्षण नहीं करते वह अश्वमेध का फल प्राप्त करते हैं। मांस का परित्याग करने पर देवगण प्रसन्न होते हैं। मनु के मत में मांस भक्षण का परित्याग करने पर अनुपलब्ध की भी उपलब्धि संभव है।[1] इसी संदर्भ में याज्ञवल्क्य का भी यही मत है कि जो व्यक्ति यज्ञ के अतिरिक्त अन्य मांस न खाने का संकल्प करता है वह सभी प्रकार की अभिलाषाओं तथा अश्वमेध–यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। मांस भक्षण ने करने वाला ब्राह्मण स्वगृह में रहता हुआ भी मुनि सम होता है।

खाद्य पदार्थ
शाकाहारी वर्ग के अन्तर्गत लोगों द्वारा खायें जाने वाले खाद्य पदार्थों में जौ, गेहूँ, घृत, दूध एवं दूध से बनाये गए भोज्य पदार्थों का वर्णन है।[2] उस समय भोज्य पदार्थों में कृसरसंयाव–तिल चावल मिलाकर पकाया दूध अर्थात् तिल चावल की खीर, गाढ़ा किया दूध अर्थात् रबड़ी और मालपुआ आदि का नाम मनृस्मृति में मिलता तो है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन भोज्य पदार्थों को बनाया जाता था। हां मगर इनका सेवन निषिद्ध माना गया है।[3] इसके अतिरिक्त यवागू का वर्णन मिलता है।[4] समाज में जो लोग मांसाहार ग्रहण नहीं करते थे, उनके लिए शाकाहार का महत्त्व रहा होगा, अतः शाकाहार के अन्तर्गत भी कुछ न कुछ भोज्य अथवा खाद्य पदार्थों के उपयोग किया जाता था जिनमें प्राचीन विधान के अनुसार लताओं के फलों की भी शाक के रूप में गणना होती थी। शाकों में लताओं तथा छोटे–छोटे पौधें के पत्र तथा डण्ठल भी आते हैं। शाकों की परिधि में प्याज, लहसुन, मूली आदि भी परिगणित हैं। जहाँ एक ओर शाक वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पदार्थों का वर्णन तो है, वहीं यह भी वर्णन है कि सभी शाक–सब्जियां खाद्य नहीं थी। उनमें से कुछ वर्जित भी थीं, जिनमें लहसुन,

शलजम, प्याज़, कुक्कुरमुत्ता तथा गन्दगी में उत्पन्न होने वाले खाद्य बुद्धिनाशक होने के कारण विप्रों के लिए अभक्ष्य बताये गये हैं। अतः स्पष्ट है कि इनका सेवन निषिद्ध बताया गया है। [5]

फल– भारतीय भोजन में आरम्भिक युग से आर्यों के आहार में फलों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जब उनके जीवन में किसी खाद्य सामग्री से उनका परिचय नहीं था, तब से ही फल आर्यो के जीवन का अंग रहे हैं, जिनसे वे अपनी भूख मिटाते थे। अतः कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन आर्यों के भोजन–पान में फलाहार का मुख्य स्थान था।

भारतीय जलवायु में विभिन्न प्रकार के फल उत्पन्न होते रहे हैं। भोजन के लिए उपयोगी फ्रफलों में आम, दाडिम (अनार), बदर (बेर), सिंवीतिका (सेब), कपित्थ (कैथ), मातुर्लिग (नींबू), पियाल (चिरौजी), लकुच (बड़हल), पनस (कटहल), कदम्ब, इमली, नारंगी, गूलर, जामुन, राजादन (खिरनी), ताल, नारियल, केला, काश्मर्य (खूबानी), खजूर, बादाम, अक्षोड़ (अखरोट), अभिषुक (काजू), निचुल (चिलगोजा), निकोच (पिस्ता) लवली, जायफल, लवंग आदि प्रख्यात रहे हैं।

मांसाहार– तत्कालीन युग में बहुसंख्यक व्यक्ति मांसाहारी थे। मनुस्मृति में मांसाहार के सन्दर्भ में तीन विचारों का उल्लेख मिलता है। इसके कुछ अंश में मांसाहार के उपयोग पर प्रतिबंधात्मक अनुमति का वर्णन मिलता है। यह कहा गया है कि ब्राह्मणों को मांस खिलाने की इच्छा हो तो यज्ञ में प्रोक्षण विधि से मांस को शुद्ध करके ब्राह्मणों को परोसें और स्वयं खायें। प्राणों की रक्षा करने के लिए मांस खाना पड़ जाए, तो विधि और नियम का पालन करके ही सेवन करना चाहिए। [6] जानवरों के मांस को मधुपर्क, यज्ञों, श्राद्धों तथा देवताओं के लिए प्रस्तुत किया जाता था।[7] प्राचीनकाल में ऋषियों, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के यज्ञों में भक्ष्य पशु–पक्षियों के पुरोडाशों के होने के भी प्रमाण मिलते हैं। [8] मनु के मत में प्रजापति ब्रह्मा ने सब प्रकार के अन्न प्राणों की रक्षा के लिए ही बनाये हैं। अतः व्यक्ति को इस संसार के सभी स्थावर और जंगम–पदार्थों को जीवों का भोजन समझना चाहिए [9] परन्तु साथ ही यह भी वर्णित है कि यज्ञ के लिए पशु का वध और मांसभक्षण देवोचित कार्य है तथा यज्ञ के सिवाय मांसभक्षण के लिए पशुवध करना राक्षसी कृत्य है। [10] मधुपर्क, यज्ञ, श्राद्ध तथा देवपूजा–केवल इन चारों में ही मनु अनुसार पशुवध का विधान है। मनु का यह कथन है कि जो ब्राह्मण वेद के तत्वार्थ को जानने तथा समझने वाला है, वह मधुपर्क आदि में पशुहिंसा करता हुआ अपने लिए और वध किए गए पशु के लिए उत्तम गति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। [11]

पेय पदार्थ

भोजन की भांति पेय भी जीवन के लिए आवश्यक है। पेय के अन्तर्गत सर्वप्रथम स्थान जल का है। सृष्टि के आदिकाल से सभी जीवधारियों के लिए जल की आवश्यकता रही है।

जल

जल ग्रहण करने से व्यक्ति जीवन–धरण किए रहता है तभी जल को जीवन का पर्याय माना गया है। अतः पेय पदार्थों में जल का स्थान सर्वोपरि माना गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी जल से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते हैं। उस युग में अन्न के अभाव में गृहस्थ के लिए यह कर्त्तव्य बताया है कि वे पितरों एवं मनुष्यों को जल से तृप्त करे। सांयकाल आये अतिथि को अन्न न रहने पर जल पिलाकर ही उसका अतिथिसत्कार किया जाता था। इसके साथ ही व्रत में जल ग्रहण करने से व्रत को पूर्ण माना जाता था तथा उत्सव आदि के अवसर पर सुगन्धित जल पीने का प्रचलन रहा है। नागकेसर, चम्पक, कमल, पाटल आदि पुष्पों से पानी को सुगन्धित करके सोने, चांदी, तांबे मणि अथवा मृण्मय बर्तनों में जल पिया जाता था।

दुग्ध

जल के पश्चात लोकप्रियता की दृष्टि से दूसरा श्रेष्ठ पेय दूध है। प्राचीन काल से ही लगभग सभी वर्गों के लोग दूध देने वाले गाय–भैंस रखते आए हैं, तब गाय पालने का बड़ा प्रचलन था। राजा एवं ऋषि मुनि बड़ी संख्या में गौ पालते थे।

भोज्य सामग्री में अनाजों के अतिरिक्त भोजन में दूध एक महत्वपूर्ण पदार्थ माना गया है। व्रत के अवसर पर दूध का सेवन होता था।

वैदिक ऋषियों ने दूध की अत्यध्कि महत्ता स्पष्ट की है। दूध से लोगों की रक्षा होती है वही उनका जीवन है। दूध प्राण है ऐसा स्मृतियों में वर्णित है। इसके अतिरिक्त दूध उबाल कर भी पिया जाता था तथा दूध में शक्कर मधु तथा अन्य वस्तुएं भी मिलायी जाती थीं। दूध में घृत मिलाकर भी पिया जाता था।

मादक पेय

सुरापान– मनुस्मृति में तीन प्रकार की सुरा का वर्णन किया गया है– गुड़, पीठी तथा महुवे से बनने वाली। इन तीनों को मलरूप बताया गया है तथा इसका सेवन निषिद्ध बताया गया है। [12] यह भी कहा गया है कि निकृष्ट प्रकार के मादक पदार्थ, मदिरा, मांस, सुरा तथा आसव ये सब यक्षों, राक्षसों तथा पिशाचों के पेय पदार्थ हैं। देवों को हवि देने वाले द्विजातियों को इनका सेवन नहीं करना चाहिए। [13] चूंकि सुरा सभी अन्नों का मल है और मल का ही दूसरा नाम पाप है, अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिए। सुरापान को किसी भी प्रकार अच्छा नहीं माना गया, बल्कि सुरा की निन्दा ही की गयी है। [14] मनु के अनुसार यदि कोई मोहवश सुरापान करता है तो उसे इस पाप की निवृति के लिए आग में उबलती हुई सुरा पीनी चाहिए, जिससे उसका शरीर जल जाये तथा उसे विषम वेदना झेलनी पड़े। इस प्रकार इस उपाय से प्रायश्चित समझा जायेगा।[15] अतः स्पष्ट है कि संहिता युग में सुरापान को अधर्म समझा जाता था।

संहितायुग में स्वच्छता का भी बहुत महत्त्व था। भोजन की सारी प्रक्रिया में स्वच्छता का होना आवश्यक था। भोजन पकाने और परोसने वाले को मन और शरीर से शुद्ध होना आवश्यक था।

मनु के अनुसार ब्रह्मचारी को आयु की इच्छा से पूर्वाभिमुख, यशकामना से दक्षिणामुख, धन की अभिलाषा से पश्चिमाभिमुख और सत्य की इच्छा से उत्तराभिमुख होकर भोजन करना चाहिए।[16]

प्राचीन भारतीय हमेशा भोजन ग्रहण करने से पूर्व हाथ पैर तथा मुहँ धोकर ही भोजन शुरु करते थे। भोजन ग्रहण करने के पूर्व तथा उपरान्त तीन बार आचमन करने की विधि थी।[17]

साथ ही यह भी निर्देश थे कि ब्रह्मचारी हाथ–पैर धोकर आचमन करके भोजन करे, भोजन के अंत में भी आचमन करे और जल से हाथ से आँख, नाक, कान का स्पर्श करे। भोजन आदर पूर्वक ग्रहण करे, अन्न की निन्दा न करे, अन्न को देखकर प्रसन्न हो और अन्न को प्रणाम करे। वह किसी को झूठा अन्न न दे, समय से भोजन करे, अति भोजन का त्याग करे और झूठे मुंह कहीं न जाये। इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति द्वारा छोड़ा गया, विशेषकर पेय पदार्थ जैसे जल, दूध, दलिया, दही, मक्खन तथा शहद का उपभोग करना उचित नहीं माना जाता था। [18] इस पर भी विशेष बल दिया गया है कि किसी स्त्री अथवा शूद्र द्वारा छोड़ा गया भोजन तथा शास्त्रा द्वारा निषिद्ध पक्ष्यादि द्वारा भोजन भी किसी को नहीं खाना चाहिए।[19] मनु के अनुसार ऐसा विद्यार्थी जिसने वैदिक शिक्षा पूर्ण कर ली हो उसे न तो किसी नशा करने वाले, गुस्से वाले अथवा बीमार व्यक्ति द्वारा दिया भोजन ग्रहण करना चाहिए और न ही जानबूझ कर पावं से छुए भोजन को ही ग्रहण करना चाहिए। उसे ऐसे भोजन का भी त्याग करना चाहिए जो आदर–भाव के साथ न दिया गया हो अथवा जिस भोजन में अपवित्र मांस अथवा जो किसी शत्रु का भोजन हो अथवा जो किसी नगर के शासक द्वारा दिया

गया हो अथवा जिस पर किसी ने छींक दिया हो परन्तु कन्दमूल तथा फल किसी भी जाति के किसी भी व्यक्ति से लिए जा सकते हैं।[20] रातभर रखा हुआ भोजन अथवा जो खट्टा हो गया हो उस भोजन का त्याग करना चाहिए, जबकि मक्खन में बनाई गई खाद्य–सामग्री तथा यज्ञ में प्रसाद के अवशेष रूप को ग्रहण किया जा सकता है, चाहे उनको रात भर रखा गया हो।[21]

मनु के अनुसार भोजन हमेशा आदर भाव के साथ तथा प्रसन्नचित भाव में ही ग्रहण करना चाहिए। यह विश्वास किया जाता था कि प्रसन्नचित भाव से ग्रहण किया हुआ भोजन व्यक्ति को मजबूत बनाता है। इस बात पर भी विशेष बल दिया गया है कि किसी व्यक्ति को जब खाना परोसा जाए तब न तो आंसू बहाने चाहिए, न तो गुस्सा करना चाहिए अथवा झूठ नहीं बोलना चाहिए और न ही गाली देनी चाहिए। [22] सुबह तथा शाम के भोजन के मध्य भोजन ग्रहण करना उचित नहीं बताया गया। [23] साथ ही यह भी वर्णित है कि चलते– चलते भोजन नहीं खाना चाहिए, न ही सुबह बहुत जल्दी और न ही शाम को बहुत देर से भोजन करना चाहिए।[24] जरूरत से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सेहत के लिए अच्छा नहीं माना गया।[25]

विद्यार्थियों के लिए यह कहा गया कि वह भिक्षा मांग कर गुजारा करें तथा शहद, मांस, विशिष्ट सुगन्धित पदार्थ आदि से बच कर रहें।[26] तपस्वी या योगी लोग साधरणतः टूटे हुए चावल के कण अर्थात् किनकी, कुल्माष, तेल की बनी रोटी, पत्तों, जौ की मांड़, दलिया, जड़ों तथा फलों पर जिन्दा रहते थे। वनवासियों द्वारा उन फलों का उपयोग किया जाता था जो पेड़ से बिना तोड़े खुद नीचे गिरे होते थे।[27]

सामान्यतया यह नियम था कि भोजन ग्रहण करते समय दो वस्त्र पहने हुए होने चाहिए[28] तथा जूते तथा सिर का कपड़ा नहीं होना चाहिए।[29] क्योंकि सिर को पगड़ी से अथवा साफा से वेष्टित करके अथवा सिर में टोपी लगाकर ब्राह्मणों से जो अन्न खाया जाता है, दक्षिण दिशा की ओर मुख करके जो अन्न खाया जाता है तथा जूता, चप्पल इत्यादि पहनकर जो अन्न खाया जाता है, उस अन्न को राक्षस खा लेते हैं, ऐसा कहा गया है। साथ ही भोजन को न तो गोद में रखकर खाना चाहिए और न ही अधिक उतावलेपन से खाना चाहिए।[30] मीठे व्यंजन दूसरों को बिना दिए केवल स्वयं खाना भी उचित नहीं माना गया। औरतों के लिए यह निर्धारित था कि अपने पति के खाने के बाद ही उन्हें भोजन ग्रहण करना चाहिए।[31]

साधरणतया यज्ञ अनुष्ठानों के अवसर पर दावतों का प्रबन्ध होता था। ऐसे अनुष्ठानों में उन ब्राह्मणों को निमंत्रण नहीं भेजा जाता था जो कि मांस की बिक्री करता हो।[32] सामान्य रूप से तीन भद्र ब्राह्मणों को ही श्राद्ध की दावत में आमंत्रण दिया जाता था, वो भी दावत के एक दिन पहले अथवा उसी दिन।[33] सभी प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों को अच्छी प्रकार से वस्त्र पहने हुए नौकरों द्वारा परोसा जाता था।[34] जो कि गरम भोजन होता था तथा मक्खन से तैयार किया जाता था।[35] इस प्रकार श्राद्ध में विविध प्रकार के भोज्य एवं भक्ष्य पदार्थों के साथ–साथ फलों में आम, केला, सेब, सन्तरा, अमरूद, जामुन, नारियल, छोहारे इत्यादि फलों तथा विविध प्रकार से संस्कृत पशु–पक्षियों के मांसों तथा सुगन्धी पानकों अर्थात् शर्बतों का भी उपयोग होता था।[36]

मनुस्मृति में जहां शुद्धता और स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा गया है, वहीं अतिथि–सत्कार का भी विशेष महत्त्व बताया गया है।[37] मनु ने अतिथि सत्कार को बहुत महत्त्व दिया है। सभी स्मृतियों का मत है कि अतिथि का पूर्ण सत्कार होना चाहिए। अतिथि को पहले खिलाना चाहिए तथा भिक्षुक ब्रह्मचारी को भी भिक्षा अवश्य देनी चाहिए।[38] भोजन के लिए सुलभ सामग्री में से यथाशक्ति याचक को भिक्षा प्रदान करनी चाहिए तथा पधारे अतिथियों का जल, कन्द–मूल, फल आदि से स्वागत सत्कार करना चाहिए। अतिथि बिना भोजन किए नहीं रहना चाहिए। जो अतिथि को न खिलाया गया हो ऐसा दुध, मिठाई आदि पदार्थ स्वयं भी नहीं खाने चाहिए। अतिथि का पूजन अर्थात भोजनादि से सत्कार करना धन, आयु यश तथा स्वर्ग का निमित्त होता है,[39] ऐसा कहा गया है। अतिथि–सत्कार के अतिरिक्त भगवान को भोजन अर्पित करने का भी विधान था।[40] साथ ही यह भी कहा गया है बच्चों, वृद्धों, नोकरों, नवविवाहित लड़कियां, दासियां अथवा गर्भवती महिला आदि को खिलाए बिना गृहस्थ को स्वयं पहले भोजन नहीं करना चाहिए।[41] इसके अतिरिक्त स्वयं भोजन करने से पहले कुछ अंश पशु –पक्षियों, कीटों आदि के लिए भी निकाला जाता था।[42]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति, मनु, कुल्लूकभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 1982।
   मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यपफलं समम्।। मनु०, 5/53
2. यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया।। मनु०, 5/25
3. वृथाकृसरसंयावं पायसायूपमेव च। मनु०, 5/7
4. हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये। मनु०, 106
5. लशुनं गृ४जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
   अभक्षयाणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च।। मनु०, 5/5
6. प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।
   यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये।। मनु०, 5/27
7. मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
   अत्रौव पशवोहिंस्याः नान्यत्रोत्यब्रवीन्मनुः।। मनु०, 5/41
8. बभूवुर्हि पुरोडाशाः भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्।
   पुराणेष्वृषियज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रासवेषु च।। मनु०, 5/23
9. प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
   स्थावरं जघ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्।। मनु०, 5/28
10. यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधि स्मृतः।
    अतोऽन्यथाप्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते।। मनु०, 5/31
11. मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
    अत्रैव पशवोहिंस्याः नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः।।
    एष्वर्थेषु पशुन्हिसन्वेदतत्त्वार्थ विद्द्विजः।
    आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम्।। मनु०, 5/41–42
12. गौडी तैष्ठी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविध सुरा।
    यथैवैका तथा सर्वाः न पातव्याः द्विजोत्तमैः। मनु०, 6/94
13. यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
    तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हवि।। मनु०, 6/95
14. सुरा वे मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
    तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।। मनु०, 6/93
15. सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
    तथा सः काये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः। मनु०, 6/90
16. आयुष्यं प्राघ्मुखो भुघ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
    श्रियं प्रत्यघ्मुखो भुघक्ते तं भुघक्ते ह्मदघ्मुखः।। मनु०, 2/52
17. उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः।
    भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगदिभः खानि च संस्पृशेत्। मनु०, 2/53
18. नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यान्नाद्याच्चैव यथान्तरा।
    न चैवात्यशनं कुर्यान्नोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्। मनु०, 2/56
19. अभोज्यानां तु भूक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।
    जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रां यवान पिबेत्।। मनु०, 11/152
20. मनु०, 5/9, 10, 24, 25
21. यत्किंचत् स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगंर्हितम्।
    तत्पर्युषितमप्याद्यं हविः शेषं च यद् भवेत्।। मनु०, 5/24
22. पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
    हृष्टवा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः।
    पुजिंत ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
    अपूजिंत तु यद भुक्तमुभयं नाशयेदयम्।। मनु०, 2/54–55
23. सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुति चोदितम्।
    नान्तर भोजनं कुर्यादिग्निहोत्रासमो विधिं।।मनु०, 2/6
24. नाश्नीयात् संध्विेलायां न गच्छन्नपि संविशेत्। मनु०, 4/55
    न भुंजीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत्।

नाति प्रगे नाति सायं न सायं प्रातराशितः।।मनु०, 4/62

25. अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यलोकविद्वष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत्।। मनु०, 2/57
26. वर्जयेन्मधु मांसं चगन्धं मालयं रसान स्त्रियः।
शुकतानि यानि सर्वानि प्राणिनां चैव हिंसनम्।। मनु०, 2/177
27. पुष्पमूलपफलैर्वापि केवलैर्वतैयेत् सदा।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसः।। मनु०, 6/21
28. नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत्। मनु०, 4/45
29. यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुघ्क्ते दक्षिणामुखः।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुंजते। मनु०, 3/238
30. नोत्संगेभक्षयेद् भक्ष्यान्न जातुस्यात् कुतूहली। मनु०, 4/63
31. नरश्नीयाद् भार्यया सार्धम् नैनामीक्षेत चाश्नतीम्। मनु०, 4/43
32. चिकित्सकान देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः।। मनु०, 3/152
33. पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते।
निमन्त्रायेतत्र्यवरान सम्यग् विप्रान यथोदितान्। मनु०, 3/187
34. गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पप्योदधि घुतं मधु।
विन्यसत्े प्रयतः पूर्व भूमावेव समाहितः।। मनु०, 3/226
35. भक्ष्यं भोज्य च विविध मूलानि च पफलानि च।
हृद्यानि चैव मांसनि पानानि सुरभीणि च। मनु०, 3/227
36. अत्युषणं सर्वमन्नं स्याद भुंजीरस्ते वाग्यताः।
न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान्।। मनु०, 3/236
37. अप्रोणोद्योतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत्। मनु०, 3/105
38. कृत्वैतद् बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विध्विद् ब्रह्मचारिणे।। मनु०, 3/94
39. न वै स्वयं तदश्नीयादतिथि यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुषं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।। मनु०, 3/106
40. देवान ऋषीन् मनुष्यांश्च पितृन ग्रह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुम्भवेत्।। मनु०, 3/117
41. सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणीगर्भिणीस्त्रियः।
अतिथिभ्यो{ग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन्।। मनु०, 3/114
42. शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम।
वायसानां कृमीणां च शनकै निर्वपेद भुवि।। मनु०, 3/92